

देवता-विचार।

लेखक और प्रकाशक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा).

प्रथमवार २०००

विक्रम संवत १९७७, ईसवी सन १९२१.

मूल्य ≡) तीन आने।



देवता-विचार ।



लेखक और प्रकाशक ।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)



प्रथम वार २०००



संवत् १९७७, सन १९२१



मूल्य तीन आने ।



देवता-विचार ।

वेदोंका अभ्यास करनेके समय, यदि सबसे कठिन कोई प्रश्न सामने आता है, तो "**देवताओंका प्रश्न**" है। देवता किसको कहते हैं? और उनका स्वरूप क्या है! इनका जब तक निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया जाता, तब तक मंत्रोंका निश्चित अर्थ जानना भी अत्यंत कठिन है। वैदिक वाङ्मयमें "**देव और देवता**" शब्दोंके अर्थ इतने संकीर्ण और व्यापक हैं, कि उनको देखनेसे पढनेवालेका मन चक्करमें पड जाता है। इस लिये वास्तवमें सबसे प्रथम यदि किसी बातका निश्चय करना आवश्यक है, तो इसी "**देवता**" विषयका है। सब विद्वानोंके प्रयत्न सबसे प्रथम इस बातमें लगने चाहिए। देवताका संबंध प्रत्येक मंत्रमें आता है। इस लिये हरएक मंत्र पढनेके समय देवताकी निश्चित कल्पना सबसे प्रथम पाठकके मनमें खडी होनी चाहिए। प्राचीन परंपराके अनुसार यदि देखा जायगा तो "**छंद-ऋषि-देवता**" का निश्चित ज्ञान होनेके पूर्व मंत्रका अर्थ-विज्ञान हो ही नहीं सकता। इतना इस विषयका महत्व होनेसे इसका थोडासा स्वरूप पाठकोंके सन्मुख रख देनेका संकल्प किया है, आशा है कि पाठक इसका अधिक विचार करेंगे। देवोंके माताओंका वर्णन निम्न मंत्रमें देखिए-

अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥

ऋ. ६।१७।७

" (देव-पुत्रे) देव जिनके पुत्र हैं ऐसे (प्रत्ने) पुराणे (यह्वी) विस्तृत (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक ये दो (मातरौ) माताएं हैं जिनका (ऋतस्य) सत्य नियमके अनुसार तू (अधारयः) धारण करता है। " इस मंत्रमें " **देव-पुत्रे रोदसी** " ये शब्द बता रहे हैं कि द्युलोक और पृथिवी लोकके पुत्र सब देव हैं। इनमें बीचके स्थानमें अंतरिक्षलोक की भी कल्पना करना उचित है, क्यों कि, (१) पृथिवी, (२) अंतरिक्ष और (३) द्यु ये तीन ही लोक हैं। " **रोदसी** " शब्द यद्यपि पृथिवी और द्युलोकका ही वाचक है, तथापि उनके बीचमें अंतरिक्ष स्थान आजाता है। अर्थात् उक्त तीनों लोकोंके पुत्र सब देव हैं यह बात उक्त मंत्रसे सूचित होती है। उक्त मंत्रमें देवोंकी दो माताएं हैं ऐसा कहा है। पुराणोंमें " द्वै-मातुर " शब्द आता है। दो माताओंसे जन्मा हुआ एक देव उक्त शब्दसे ज्ञात होता है। उक्त मंत्रके साथ इस शब्दका संबंध जोडनेसे " द्वै-मातुर " शब्दका अर्थ स्पष्ट हो सकता है। देवोंके माताओंका दर्शन करनेके पश्चात् देवोंके पिताका दर्शन कीजिए—

देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ऋ. २।२६।३

" जो (श्रद्धा-मना) श्रद्धामय मनसे युक्त भक्त हवनसे (देवानां पितरं) देवोंके पिता (ब्रह्मणस्पतिं) ज्ञानपतिकी (आविवासति) उपासना करता है। " इस मंत्रमें " **देवानां पितरं ब्रह्मणस्पतिं** " इन शब्दोंद्वारा सब देवोंका पिता एक ही

ब्रह्मणस्पति है, ऐसा स्पष्ट कहा है। तात्पर्य सब देवोंका पिता ब्रह्मणस्पति और सब देवोंकी दो माताएं हैं—

१ एक पिता—ब्रह्मणस्पति।

२ दो माताएं—द्यु और भूमी (द्यावा पृथिवी)। सूक्ष्म तत्व और स्थूल तत्व।

३ पुत्र—सब देवता गण।

देवोंके मातापिताओंका इस प्रकार वर्णन वेद कर रहा है। एक पिताकी दो धर्मपत्नियां यहां लिखीं हैं, तथापि इससे कोई बहुपत्नि-वाद की कल्पना न करे। क्योंकि यह एक अलंकार है। इस लिये अलंकार की काव्यमय दृष्टिसेही इसका विचार करना योग्य है। यह बात निम्न मंत्रसे स्पष्ट होती है—

परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो
देवानां पिता पुत्रः सन्॥ ऋ. १।६९।१

"(प्रजातः)प्रकट होते ही (क्रत्वा) पुरुषार्थसे (परि बभूथ) सबसे श्रेष्ठ बन गया। जो (देवानां पिता) देवोंका पिता होता हुआ भी (पुत्रः सन्) पुत्र ही था।' पिता और पुत्र एक ही नहीं हो सकते, परंतु यहां एककाही वर्णन होनेसे स्पष्ट है कि, ये शब्द विशेष आलंकारिक अर्थसे प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार पूर्वोक्त "पिता माता" शब्दोंके विषयमें समझना उचित है। जो पिता होता है, उसीको आत्मा भी कहते हैं, क्यों कि "**आत्मा वै पुत्र नामासि।**" (श. ब्रा. १४।९।४।२६) आत्माही जाया में

प्रविष्ट होकर पुत्ररूपसे प्रकट होता है । इस दृष्टिसे निम्न मंत्र देखिए—

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ॥ ऋ. १०।१६८।४

"(देवानां) सब देवोंका एक आत्मा जो सब भुवनोंका गर्भ है वह (एषः देवः) एक देव (यथा वशं) अपनी स्वाधीनतासे (चरति) चलता है ।" इसके साथ निम्न मंत्र देखिए—

आत्मा देवानां जनिता प्रजानाम् ॥ ऋ. उ. ४।३।७

आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ॥ अथर्व. ७।१११।१

"देवोंका आत्मा और प्रजाओंका जनक है । देवोंका और मनुष्योंका एक आत्मा है ।" इत्यादि मंत्रोंद्वारा सब देवोंके एक आत्माकी कल्पना स्पष्ट हो रही है । यही देवोंका भी देव है, देखिए—

देवो देवानां गुह्यानि नाम ॥ ऋ. ९।९५।२

देवो देवानां जनिमा विवक्ति ॥ ऋ. ९।९७।७

देवो देवानां न मिनामि धाम ॥ ऋ. १०।४८।११

देवो देवानामभयः शिवः सखा ॥ ऋ. १।३१।१

देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः ॥ मै. सं. ४।९।६

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतः ॥ ऋ. १।९४।१३

देवो देवानां पवित्रमसि ॥ तै. सं. १।४।२।१

"एक देव अनेक देवोंका जनक, मित्र, अभयदाता आदि है ।" एक व्यापक देव है, और दूसरे अव्यापक देव हैं, यह बात भी इन मंत्रोंद्वारा सूचित हो सकती है । यहां पाठक देख सकते हैं कि, एकही

देव शब्दका उपयोग किस प्रकार विलक्षण है। आत्माके लिये तथा अन्य देवताओंके लिये भी वही एक शब्द प्रयुक्त हो रहा है, क्योंकि आत्माकी एक एक शक्ति लेकर अन्य देव देवत्वको प्राप्त हुए हैं। आत्मा अजन्मा हैं, परंतु ये अन्य देव जन्म लेते हैं। इनका अमरत्व आत्माकी शक्तिपर अवलंबित है। वास्तविक ये अमर नहीं हैं, परंतु उसकी शक्ति प्राप्त होनेके पश्चात् ये अमरत्वको प्राप्त हो गये हैं, इस विषयमें निम्न मंत्र देखिए—

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सोऽपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयंस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः॥
य. १३।५१

"(अग्नेः) अग्निकी (शोकात्) उष्णतासे एक (अजः) अजन्मा देव (अजनिष्ट) प्रकट होगया। (अग्रे) प्रथमतः (सः) उसने (जनितारं अपश्यत्) जनक का दर्शन किया। (तेन) उसीसे सब (देवाः) देव (देव—तां) देवत्वको (अग्रे आयन्) प्रथम प्राप्त हो गये; (तेन रोहं आयन्) उसीसे उच्चताको प्राप्त हुए और (उप मेध्यासः) पवित्र भी बने।" अर्थात् उस एक अजन्मा देवके तेजसे अन्य देवोंका देवत्व है। अन्य देवोंका देवत्व, उच्चत्व, पवित्रत्व, अमरत्व आदि जो कुछ श्रेष्ठत्व है, वह उस एक अद्वितीय देवकी शक्तिके कारणही है। यह एक देवका अन्य देवोंके साथ संबंध देखने योग्य है। इसी विषयमें निम्नमंत्र देखिए—

तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ ऋ: ३।६०।२
तेन देवा अमृतमन्वविंदन् ॥ अथ. १३।१।७

तेन देवा सुवरन्वविंदन् ॥ तै. ब्रा. ३।९।२।४
तेन देवा अयजन्त ॥ ऋ. १०।९०।७
तेन देवा असहन्त शत्रून् ॥ सा. मं. ब्रा. २।३।२१
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् ॥ अथ. ३।१०।१२
तेन दस्यून्व्यसहन्त देवाः ॥ तै. सं. ४।३।११।३

" उसी एक से अन्य देवोंको अमृतत्व, देवत्व, स्वर्गत्व आदि प्राप्त हुआ । उसी एकके सामर्थ्यसे अन्य देव शत्रुओं और दस्युओंके साथ युद्ध करनेके लिये समर्थ हो गये " तात्पर्य उस एक आत्माकी शक्ति सब अन्य देवोंमें व्यापक हो रही है । यही बात निम्न मंत्र में देखिए—

तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरु दधाना
अमृतं सपन्तः ॥ ऋ. ५।३।४

तव श्रिये मरुतो मर्जयंत ॥ ऋ. ५।३।३

" हे देव ! तेरी शोभासे ही अन्य देव दर्शनीय बने हैं और अमृतको प्राप्त हो गये हैं ।" अर्थात् इस वैदिक कल्पनासे अन्य देवोंका " अमर " नाम अपने निज गुणसे नहीं है, परंतु आत्माके अमरपनसे उनमें अमरत्व प्राप्त हो गया है । इसलिये वेद कहता है कि—

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तंतुं विततं दृशे कम् ॥
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयंत ॥
अ. २।१।५

" (ऋतस्य विततं) सत्यके विस्तृत और (कं तंतुं) सुख मय तंतुको (दृशे) देखनेके लिये सब भुवनोंका निरीक्षण किया; (यत्र समाने योनौ) जिस समान मूल स्थानमें सब देव अमृतको प्राप्त होते हुए पहुंचते हैं।" इस मंत्रमें सर्वव्यापक सूत्रआत्मासे ही सब देवोंको अमृत प्राप्त होनेकी निश्चित कल्पना कही है। यही बात निम्न मंत्रोंमें कही है—

तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् ॥ ऋ. ६।७।४
त्वं देवां अभिशस्तेरमुंचः ॥ ऋ. ७।१३।२
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ऋ. ९।१०६।८
येन देवा देवतामग्र आयन् ॥ अथ. ३।२२।३

" तेरे पुरुषार्थोंद्वारा देवोंको अमरपन प्राप्त हुआ। तूने देवोंको कष्टोंसे बचाया है। देव अमरपनकी प्राप्तिके लिये सुख स्वरूप तेरा ही पान करते हैं। सब देव जिस तुझसे प्रारंभमें ही देवत्वको प्राप्त हुए।" इन सब मंत्रोंसे पूर्वोक्त ही भाव स्पष्टतया व्यक्त हो रहा है। निम्न मंत्रने इसी विषयको अधिक स्पष्ट कर दिया है—

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ॥ ऋ. ४।५४।२

" सब (यज्ञियेभ्यो देवेभ्यः) पूज्य देवोंके लिये सबसे प्रथम तूं उत्तम भजनीय अमृत अर्पण करता है।" तथा—

येन देवा स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिं ॥ अ. ४।११।६

" (शरीरं हित्वा) शरीरको त्याग कर सब देवोंने (येन) जिसके आश्रयसे (अमृतस्य नाभिः स्वः) अमरपनके तेजोमय केंद्रको प्राप्त किया " इस मंत्रमें देव भी शरीरका त्याग करके अमरपनको प्राप्त करते हैं, यह नवीन बात कही है । अर्थात् देवोंको भी भौतिक शरीरका त्याग किये विना अमरपन प्राप्त नहीं होता । जैसा एक परमात्मा देव स्वयंभु है वैसे अन्य देव स्वयं अपने ही आधारसे नहीं रह सकते । उनकी स्थितिके लिये परमेश्वरके आश्रयकी अत्यंत आवश्यकता है । देखिए —

महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इंद्रे ॥

ऋ. ३।५४।१७

" हे (कवयः) ज्ञानी देवो ! आपका वह ही बडा नाम है कि जो आप सब एक इंद्रके आश्रयमें रहते हैं । " एक इंद्रके अर्थात् एक प्रभुके आधीन और उसीके आश्रयसे सब अन्य देव रहते हैं, इसीलिये देवोंका सब यश है । इस विषयमें प्रो० लुडविग् महोदय कहते हैं—The glory of the gods consists in their recognition as forming a part of the true, supreme and all-embracing Divine Principal, in which, as the Absolute God, all their individual attributes are absorbed and vanished. " सब अन्य देवोंका महत्व इसीमें है कि वे उस एक सत्य श्रेष्ठ सर्व व्यापक दिव्य तत्वके अवयव बन कर रहे हैं, जिस एक अमर्याद प्रभुमें ही सभ अन्य देवोंके सब गुण एक रूप हो जाते हैं । " यदि यह वैदिक सिद्धांत सब पाद्रि लोक मान जाते, तो वैदिक धर्म परसे उनका आक्षेप निर्मूल

हो जाता। वेदमें अनेक देवतावाद नहीं है, वेदमें केवल एक ही परमात्मा देव है, इसकी एक एक शक्ति लेकर अन्य देवोंका अस्तित्व है, अन्य देवोंका स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है, यह बात यहां स्पष्ट हो रही है। यद्यपि "देव" शब्द जैसा परमात्माको प्रयुक्त होता है, वैसा ही अन्य पदार्थोंको भी प्रयुक्त होता है, तथापि इससे विद्वानोंका चित्त भ्रांत नहीं होना चाहिए। क्योंकि एक ही शब्द कई अर्थोंमें वेदमें प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार संस्कृत भाषामें भी प्रयोग होते हैं। वह ही बात "देव" शब्दके विषयमें हो गई, तो उसमें क्या आश्चर्य है? अस्तु। यह वेदका सिद्धांत ब्राह्मण ग्रंथोंमें कथाओंके रूपसे अधिक स्पष्ट कर दिया है—

प्रजापतिः प्रजा असृजत। स ऊर्ध्वेभ्यः प्राणेभ्यो
देवानसृजत ये ऽवांचः प्राणास्तेभ्यो मर्त्याः
प्रजा अथोर्ध्वमेव मृत्युं प्रजाभ्योऽत्तारमसृजत ॥ १ ॥
तस्य ह प्रजापतेः। अर्धमेव मर्त्यमासीदर्धम
मृतं तद्यदस्य मर्त्यमासीत्तेन मृत्योरबिभेत्० ॥ २ ॥
तदेता वा अस्य ताः। पंच मर्त्यास्तन्व आसन् लोम
त्वङ् मांसमस्थि मज्जाऽथैता अमृता मनो वाक्
प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम् ॥ ४ ॥.........ते देवा अब्रुवन्।
अमृतामिमं करवामेति तस्यैताभ्याममृताभ्यां
तनूभ्यामेतां मर्त्यां तनूं परिगृह्यामृतामकुर्वन्० ॥ ६ ॥

शत. ब्रा. १०।१।३।

उभयं हैतदग्रे प्रजापतिरास । मर्त्यं चैवाऽमृतं च तस्य प्राणा एवाऽ ्ता आसुः शरीरं मर्त्यं स एतेन कर्मणैतयावृतैकधाजरममृतमात्मानमकुरुत ॥ १ ॥

शत. ब्रा. १०।१।४

" प्रजापतिने प्रजा उत्पन्न की। उसने उच्च प्राणोंसे देवोंको उत्पन्न किया और हीन प्राणोंसे मर्त्योंको उत्पन्न किया। इस सृष्टिकी उत्पत्तिके पश्चात् उसने मृत्यु उत्पन्न किया और सबका भक्षण करनेके काममें उसको लगाया॥ उस प्रजापतिका आधा भाग मर्त्य था और आधा अमर था। जो उसका मर्त्य भाग था उसके कारण उसको मृत्युका भय हुआ॥ येही उसके पांच मर्त्य शरीर थे; केश, त्वचा, मांस, अस्थि और मज्जा और ये पांच अमृत शरीर थे; मन, वाचा, प्राण, चक्षु और श्रोत्र॥ वे देव कहने लगे कि हम इसको अमर बनायेंगे, ऐसा कह कर, उन्होंने अमृतशरीरोंके द्वारा मर्त्य शरीरोंको भी अमर बनाया॥ प्रारंभमें प्रजापतिके दो स्वरूप थे एक मर्त्य और दूसरा अमर। उसके प्राणही अमर थे और शरीर मर्त्य था। इस कर्म और विधिसे उसने अपने आपको अजर और अमर बनाया॥ "

इस शतपथ ब्राह्मणके कथाभागमें स्पष्ट बताया है कि मर्त्योंको अमर किस प्रकार बनाया जाता है। मूल प्रजापतिमें जो अमृत भाग रहता है, मर्त्य उसके आधार अथवा आश्रयसे मर्त्य भागको अमर बनाया जाता है। यहां प्रजापति नाम आत्माका है, और सब अन्य इंद्रिय अन्य देवताएं हैं। आत्माके प्राणरूप अमृतसे अन्य इंद्रियोंका

और अन्य अंगोंका अमरपन होता है । इस दृष्टिसे ही पूर्वोक्त मंत्रोंका भाव देखना योग्य है । आत्माकी शक्तिसे ही सब जगत्में अमरपनका अनुभव आ रहा है । अग्नि जल पृथिवी आदिमें जो विलक्षणता है, वह आत्माकी शक्तिसे ही है तथा शरीरमें इंद्रियों और अंगोंकी जो तेजस्विता है, वह आत्माकी ही है । इंद्रियों और अंगोंकी तेजस्विता स्वयं उनकी नहीं है, प्रत्युत वह सब ओजस्विता आत्माकी ही है । यही बात निम्न वचनमें कही है—

देवा वै मृत्योरबिभयुस्ते प्रजापतिमुपाधावन् ॥

तै. सं. २।३।२।१

"सब देव मृत्युसे डर गये और वे प्रजापतिके पास दौड गये।" इसमें भी वही भाव है । डरना और दौडना यहां केवल आलंकारिक है । प्रजापति अर्थात् आत्माका आश्रय करनेसे सब इंद्रियादिकोंको अमरपन प्राप्त होता है । यहि वैदिक दृष्टि है । जो वेदमंत्रोंमें देवोंके अमरत्व प्राप्तिका वर्णन पूर्वस्थलमें दिया है उसका स्पष्टीकरण इसी एक बातसे होता है । वेदमें तथा वैदिक वाङ्मयमें सर्वत्र यही दृष्टि है परंतु जो इस दृष्टिसे वेदका भाव नहीं जानते हैं, उनको वेदका तात्पर्य ही नहीं समझ सकता । इतनाही नहीं परंतु सब ब्राह्मण ग्रंथ और पुराण गाथा आदि ग्रंथोंमें भी यही प्रणाली है । पुराणोंमें लिखा होता है, कि देव राक्षसोंसे डरे, ब्रह्मा इंद्र महेश्वर आदि डरकर विष्णुकी शरण चले गये, इत्यादि सब बातोंका स्पष्टी करण उक्त दृष्टिसेही होता है । इसीको आध्यात्मिक दृष्टि कहते हैं । अपने शरीरके अंदरकी घटना देखना इस दृष्टिमें मुख्य है । शरीर ही देवोंका

मंदिर है, शरीर ही सप्त ऋषियोंका आश्रम है, शरीरमें ही देवसभा है इंद्रादि देव यहां ही शरीरमें हैं। इनको अपने शरीरमें देखना और उनके अस्तित्वका अनुभव करना धर्मका मुख्य उद्देश्य है। यह यागोंकी रचना इसी बातकी स्पष्टताके लिये है। जिस प्रकार विद्यार्थीगणोंको खगोल विद्याका उपदेश करनेके लिये फट्टे पर नकशा खेंच कर बताते हैं, कि सूर्य चंद्र आदि यहां यहां हैं, परंतु वास्तविक वहां सूर्य चंद्र नहीं होते, वे आकाशमें रहते हैं; तद्वत् ही यज्ञमंडपकी रचना शरीरकी रचनाके अनुसंधानसे बनाई गई है, और जो बातें गुप्त रूपसे शरीरमें होतीं हैं, उनको यज्ञ प्रक्रियाद्वारा व्यक्त किया है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें प्रत्येक विधिके साथ शारीरिक तत्वोंका संबंध जोड दिया है इसका यही हेतु है। इस लिये यज्ञविधिकी पूर्णता तब तक नहीं होगी, कि जब तक उससे शरीरके तत्वोंका ज्ञान प्राप्त न होगा। वेदके मंत्रोंका भी ज्ञान तब तक न होगा, कि जब तक उनमें वर्णित देवताओंका शरीरमें स्थान और कार्य ठीक प्रकार विदित नहीं होगा। अस्तु। हम इस बातका विचार इस निबंधके अंतमें करेंगे, यहां और ब्राह्मणादि ग्रंथोंके वाक्य देखते हैं। देखिए—

मर्त्या ह वा अग्रे देवा आसुः। स यदैव ते
ब्रह्मणापुरथामृता आसुः। शत. ब्रा. ११।२।३।६

" प्रारंभमें सब देव मर्त्य थे। जब उनमें ब्रह्म पूर्णतासे व्यापक होगया तब वे अमर बने। " पूर्वोक्त वेदमंत्रोंकी इस विधानके साथ

तुलना कीजिए और देखिए कि वह ही भाव कैसा स्पष्ट कर दिया है। तथा—

प्रजापतिर्देवानसृजत। ते पाप्मना संदिता
अजायंत। तान्व्यध्यत्॥ तै. ब्रा. ३।१०।९।१

" प्रजापतिने देवोंको उत्पन्न किया। पापसे वे दूषित थे, इस लिये उनका वेध किया गया। " जबतक देवोंके पास पाप था तब तक ही वे मृत्युसे डर रहे थे। जब उनसे पाप दूर होगया, तबही वे अमर बने। पूर्वोक्त कथनमें प्रथम देव मर्त्य थे। ऐसा जो कहा है, उसका यही कारण है, कि जबतक उनका पापके साथ संबंध था, तबतकही वे मर्त्य थे। अर्थात् पापकाही मूल्य मृत्यु है। जहां पाप होगा वहां मृत्यु होगा और वहांही कष्ट होंगे। जब तक पाप रहेगा तबतकही कष्ट रहेगा। पापको दूर करनेके पश्चातही कष्ट और मृत्यु दूर होसकता है। यही बात निम्न मंत्रमें है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥
इंद्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥

अथ. ११।५।१९

" ब्रह्मचर्यके तपसे देवोंने मृत्युके भयको दूर किया। ब्रह्मचर्यके द्वाराही इंद्रने देवोंको तेज अर्पण किया। " तपके कारण देव अमर बनते हैं। अपनेही शरीरमें आप देखिए कि जो इंद्रिय रूप देव हैं, वे सब ब्रह्मचर्यादि तपसेही तेजस्वी बनते हैं। और आत्माकी शक्तिसेही उनमें चैतन्य दिखाई देता है। यही भाव

बाह्य जगत्में अग्न्यादि देवोंका परमात्माके साथ संबंध देखनेसे विशद हो सकता है। अब और एक बात देखिए—

सर्वे ह वै देवाः अग्रे सदृशा आसुः सर्वे पुण्यास्तेषां सर्वेषां सदृशानां सर्वेषां पुण्यानां त्रयोऽकामयन्तातिष्ठावानः स्यामेत्यग्निरिन्द्रः सूर्यः ॥ १ ॥ ते अर्चन्तः श्राम्यंतश्चेरुः ।........तेऽतिष्ठावानोऽभवन्........॥ २ ॥ नो ह वा इदमग्रेऽग्नौ वर्च आस। यदिदमस्मिन्वर्चः सोकामयतेदं मयि वर्चः स्यादिति........ततोऽस्मिन्नेतद्वर्च आस ॥ ३ ॥ नो ह वा इदमग्र इंद्र ओज आस। यदिदमस्मिन्नोजः सोऽकामयतेदं मय्योजः स्यादिति... ....ततो अस्मिन्नेतदोज आस ॥ ४ ॥ नो ह वा इदमग्रे सूर्ये भ्राज आस । यदिदमस्मिन्भ्राजः सोऽकामयतेदं मयि भ्राजः स्यादिति........ततोऽस्मिन्नेतद्भ्राज आस ॥ ५ ॥

शत. ४।९।४।१

“ सब ही देव प्रारंभमें एक जैसे पुण्यवान थे । परंतु उनमेंसे अग्नि इंद्र और सूर्य इन तीनोंने ही अत्यंत श्रेष्ठ बननेकी प्रबल इच्छा की। वे उपासना और तप करने लगे........जिससे वे श्रेष्ठ बन गये। अग्निमें प्रारंभमें ऐसा तेज नहीं था, उसने प्रबल इच्छा की कि मुझमें तेज बढे........सो उसमें तेज बढ गया। प्रारंभमें इंद्रमें इतना बल नहीं था, उसनें प्रबल इच्छा की कि मुझमें बलकी वृद्धि होवे........उसमें बलकी वृद्धि हो गई। प्रारं-

में सूर्यमें इतनी चमक न थी उसने प्रबल इच्छा की कि मुझमें चमक बढे........उसमें चमक बढ गई। ”

इस प्रकार देवोंका प्रभाव बढ गया। मनुष्योंका भी इस प्रकार बढ सकता है। जो प्रबल इच्छाके साथ अतुल पुरुषार्थ करेगा, उसका यश बढ सकता है । देव भी कर्मके द्वारा उन्नतिको प्राप्त षार्थ करेगा, उसका यश बढ सकता है । हो सकते हैं, उनमें (१) कर्म-देव और (२) आजान-देव ये दो भेद हैं। इनके विषयमें बृहदारण्यकमें निम्न प्रकार कहा है—

ये कर्मणा देवत्वमभिसंपद्यंतेऽथ ये
शतं कर्मदेवानामानंदा स एक आजान-
देवानामानंदः ॥ बृ. ४।३।३३; शत. ब्रा. १४।६।१।१९

“ जो कर्म अर्थात् पुरुषार्थ कर देवत्वको प्राप्त होते हैं । जो ऐसे कर्म-देवोंके सौ आनंद हैं वे आजान—देवोंके एक आनंदके बराबर है ।.”

अर्थात् ‘ कर्म-देवों ’ की अपेक्षा ‘ आजान देव ’ श्रेष्ठ हैं, ऐसा यहां प्रतीत होता है। जिनका देवत्व जन्मसे है, वे आजान देव कहे जाते हैं, और जिनको पुरुषार्थसे देवत्व प्राप्त होता है, उनको कर्मदेव कहते हैं। इन दो प्रकारके देवोंमेंसे आजान देव सौ गुणा उच्च हैं। ऐसा शतपथके उक्त वचनमें स्पष्ट कहा है । अस्तु। अब शतपथका और एक वचन देखिए—

उभयं ह वा इदमग्र सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च
तद्यद्ध स्म मनुष्याणां न भवति तद्ध स्म

देवान् याचंते इदं वै नास्तीदं नोऽस्त्विति ते
तस्या एव यांचायै द्वेषेण देवास्तिरोभूताः ॥
नेद्धिनसानीति तस्मान्नोपातिष्ठेत् ॥

शत. ब्रा. २।३।४।४

"प्रारंभमें देव और मनुष्य एकत्रही थे, जो जो मनुष्योंके पास नहीं होता था, मनुष्य उसकी प्राप्तिकी प्रार्थना देवोंके पास करते थे, यह हमें चाहिए, ऐसा मांगते थे। मनुष्योंके इस प्रकार याचनाके कारण देव गुप्त हो गये, इस लिये वारंवार याचना नहीं करना चाहिए" इस प्रकार पुरुषार्थका उपदेश अलंकारसे दिया है। परंतु इससे स्पष्ट है कि मनुष्योंके पासही देवोंका वास्तव्य है। कदाचित् इस उद्देशसेही देवोंकी उत्पत्ति मनसे हो गई है ऐसा वेदमें कहा होगा।—

ये देवा मनो–जाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते
नो अवंतु ते नः पांतु तेभ्यः स्वाहा ॥ य.४।११

"जो देव (मनो–जाताः mind–born) मनसे उत्पन्न हो गये हैं और (मनो–युजः) मनके साथ संयुक्त होनेवाले (दक्ष–क्रतवः) दक्षतासे यज्ञ करनेवाले हैं, वे हमारा (अवंतु) रक्षण करें, वे हमारा सहाय्य करें, उनके लिये (स्व–आ–हा) त्याग करता हूं।" देवताओंका विज्ञान होनेके लिये यह मंत्र अत्यंत उपयोगी है। सब देव "**मनके पुत्र**" हैं और मन ही उनका पिता है। तथा ये सब मनके साथही रहते हैं। अपने पिताके साथ रहना पितृभक्त

देवोंके लिये योग्यही है । इसी विषयमें अथर्ववेदके निम्न मंत्र देखिए—

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ॥
सर्वं सं सिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥
रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ॥
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥
सूर्यश्चक्षु र्वातः प्राणं पुरुषस्य विभेजिरे ॥
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥
तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ॥
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥

अथर्व. ११।८।

" जो सब साधनोंको एकत्रित करते हैं, उनको संसिच—देव कहते हैं । ये देव मनुष्यमें प्रविष्ट हुए हैं । शरीर रूपी मर्त्य घर बना कर उस पुरुषमें ये देव प्रविष्ट हो गये हैं । रेतका घृत बनाकर ये देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं । विराट् ब्रह्मके साथ जो देवताएं और आप हैं, उनके साथ ब्रह्मका प्रवेश शरीरमें हुआ है, और शरीरमें अधिष्ठाता प्रजापति है । पुरुषका चक्षु सूर्य बना, प्राण वायु बन गया और इसके अन्य आत्मभाव इतर देवोंने अग्निको दिये । इस लिये विद्वान् इस पुरुषको ब्रह्म कहते हैं क्यों कि इसमें सब देवताएं, गौवें गोशालामें रहनेके समान, रहतीं है । "

इस पुरुष अर्थात् जीवात्माके आश्रयसे संपूर्ण देवताएं रहतीं हैं। बाह्य जगतमें जो सूर्य चंद्र वायु आदि देवताएं हैं, वे इस पुरुषके अंग बन कर इसके देहमें रहीं हैं। देवोंका अधि देव यही जीवात्मा यहां है। उक्त मंत्रमें इसीको प्रजापति कहा है। शरीरमें जो सूक्ष्म अणुजीव हैं, वे सब इसकी यहां प्रजा है। इस प्रकारके सूक्ष्म कीटाणु एक शरीरमें करोडों हैं। उन सबका यही प्रजापति है। इंद्रियां इसकीं गौवें हैं, और यही जीवात्मा गोपाल है; यह शरीरमें जो उत्तम यज्ञ करता है उसको "गो-मेध" कहते हैं। शरीर इसकी गोशाला है, इन गौवोंका सांभाल यह गोपाल करता है। इंद्रियां इसके शरीर रूपी रथके घोडे हैं, शरीर रथ है और यह वीर रथी है। इस वीरके पास अश्व होनेसे यही अश्वमेध करता है। यह अजन्मा अज है, इस रूपमें यही अजमेध करता है। इस प्रकार यही यजमान है और इंद्रियां इसके ऋत्विज् हैं, और सौ वर्षकी पूर्ण आयुतक यह सौ क्रतु करता है, इसलिये इसको शतक्रतु भी कहते हैं। शतक्रतु इंद्र होता है, इस इंद्रका यह शरीरही नंदनवन है। यह इंद्र देवोंका राजा है, सब इंद्रिय और अवयव देव हैं और यही शरीर देवोंकी नगरी, अमरावती है, देवसभा भी यहीं है। जो कल्पवृक्ष किंवा कल्पना करनेवाला वृक्ष कहा जाता है, वह यहां ही संकल्प विकल्प करनेवाला मन है। जो कल्पना जैसी यहां की जाती है वैसी ही उत्तम सिद्धि होती है। सप्त ऋषियोंका भी यही आश्रमा है। इस प्रकार कीं जो विविध कल्पनाएं पुराणों और गाथाओंमें कीं हैं सब अध्यात्मपक्षमें यहां दिखाई देतीं हैं। जब इसकी पूरी

कल्पना मनमें आ जायगी तब न केवल वेदके मंत्र परंतु पुराणकी कथाएं भी स्पष्ट रीतीसे विशद हो जांयगीं। इसीलिये सबसे प्रथम "**देवता**" की कल्पना अच्छी प्रकार विचार पूर्वक मनमें धारण करनेका यत्न करना चाहिए।

प्रायः जो देवताओंकी कल्पना वेदमें है, मुख्यतया आध्यात्मिक ही है। आध्यात्मिक भाग वह होता है कि जो एक जीवके आश्रयसे हुआ करता है। "**आत्मा, बुद्धि, मन, ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय और शरीरके सब इतर अवयव**" इतना भाग आध्यात्मिक शब्दसे जाना जाता है। एक आत्माके आश्रयसे जो कुछ रहता है वह सब आध्यात्मिक शब्दसे कहा जाता है। पूर्वोक्त अथर्ववेदके मंत्रोंमें स्पष्ट कहा है कि पुरुषके शरीरमें आत्माके आश्रयसे सब देवताएं रहीं हैं। यही बात है कि जो वेदका अभ्यास करनेवालेको कभी भूलना नहीं चाहिए। मैं जीवात्मा हूं, मेरा नाम अर्थात् जीवात्माका यश वेदमें इंद्र, अग्नि, सूर्य, सोम, सविता, आदित्य आदि नामों द्वारा वर्णन किया है। इंद्र, अग्नि आदि शब्दों द्वारा जिन दूसरे पदार्थोंका वर्णन वेदमें है वे सब मेरे शरीरमें मेरे आधीन हैं; ये ही आत्माके अतिरिक्त आत्माके आश्रयके साथ रहनेवाले अन्य देवता गण हैं। इन देवोंका अधिराजा मैं हूं। यह आध्यात्मिक पक्ष है।

जो बात अध्यात्ममें होती है अर्थात् जो देवताओंकी व्यवस्था एक सजीव शरीरमें होती है, ठीक उसी प्रकार इस महान विश्वमें होती है। जहां शरीरमें अधिष्ठाता एक जीवात्मा होता है, वहां

संपूर्ण जगत्में सर्व व्यापक एक परमात्मा होता है, और उसके आधीन अग्नि आदि देव होते हैं। इसको आधिदैविक भाव कहते हैं।

इस प्रकार व्यक्तिमें और समष्टिमें एक नियम है। इसी प्रकार चर-समष्टि अर्थात् प्राणिसमुदायमें भी है। प्राणि-समुदायकी कल्पना बडी विस्तृत है, इसलिये उसको छोडकर हम केवल मनुष्यसमूह अथवा समाजकी किंवा राष्ट्रकी कल्पना ले सकते हैं। समाजव्यवस्था और राष्ट्रशासन व्यवस्थामें भी उक्त प्रकार देवोंकी व्यवस्था है। राष्ट्रका अधिष्ठाता इंद्र होता है जिसको नरेंद्र कहते हैं। अन्य अधिकारी अन्य देव समझिए। यह आधि-भौतिक भाव है, यहां भूतका अर्थ प्राणिमात्र है।

तात्पर्य व्यक्ति समाज और जगतमें क्रमशः इंद्रादि देव हैं और उनके नियम और परस्पर संबंध एक जैसे ही हैं। उदाहरणके लिये जिस प्रकार आध्यात्मिक पक्षमें आत्माकी शक्ति नेत्र कर्ण आदि सब इंद्रियों और अवयवोंमें कार्य कर रही है और आत्माके विना नेत्रादिक देवता कार्य नहीं कर सकते; उसी प्रकार आधि-भौतिक पक्षमें राजशक्तिकी सहायताके विना कोई अन्य अधिकारी अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं होगा; ठीक इसी प्रकार आधि-दैविक पक्षमें परमात्माकी शक्तिके विना अग्नि सूर्य आदि देव अपना कार्य करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। तीन स्थानपर एक ही यह ऋत नियम कार्य कर रहा है।

यही देवताके मूल स्वरूपका विज्ञान है। पहिली बात आध्यात्मिक है और दूसरी आधिभौतिक है। जो तीसरी आधिदैविक बात है वह स्वतंत्र है, परंतु जो धर्मका संबंध आता है वह पहिले दो बातोंमेंही आता है। वेदमें धर्मका कथन होनेसे सब देवताओंके मिषसे वेदमें उक्त दो प्रकारके ही धर्म कहे हैं। जहां केवल आधिदैविक बातको उद्देश करके वर्णन होता है वहांका वर्णन भी परंपरया पूर्वोक्त दो धर्मोंके परिज्ञानके लिये ही हैं, क्यों कि धर्मका उद्देश मनुष्यव्यक्ति और मनुष्यसमष्टिकी उन्नति हैं, इस लिये सब धर्म इसी उद्देशसे कहे जाते हैं। वेदका अर्थ और देवताओंका भाव जाननेके लिये इस मूलभूत कल्पनाको स्थिररूपसे मनमें धारण करना उचित है; अन्यथा इंद्रादिकोंके स्वरूपका विज्ञानही नहीं होगा। इसका उदाहरण निम्न मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं—

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देव-वाहनः ॥

ऋ. ३।२७।१४

“ (वृषः अग्निः) बलवान अग्नि (सं इध्यते) प्रदीप्त किया जाता है, (देव-वाहनः अश्वः न) देवोंके वाहन रूप अश्वके समान। ” जिस प्रकार देवोंका वाहन अश्व होता है उस प्रकार यह बलवान अग्नि है। अर्थात् यह अग्नि भी देवोंका वाहन ही है।

अध्यात्मपक्षमें देव शब्द इंद्रिय और अंगवाचक है। इंद्रियोंका वाहन मन है, इसलिये देववाहन अश्व ‘ मन ’ है। और ‘ वृषो अग्निः ’ देवोंका किंवा इंद्रियोंका अधिष्ठाता आत्मा है। इस दृष्टिसे उक्त मंत्रका तात्पर्य निम्न प्रकार हो सकता है—

" इंद्रियोंको चलानेवाला मन जिस प्रकार तेजस्वी किया जाता है, उसी प्रकार बलवान आत्मा भी प्रदीप्त किया जाता है। "

" एक ही आत्माके अग्नि आदि अनेक नाम होते हैं " ऐसा ऋग्वेद (ऋ. १।१६४।४६) में कहा है। तदनुसार वैदिक परिभाषामें अग्नि आदि शब्द एक आत्मतत्वके बोधक हैं, इसलिये अग्नि शब्द आत्मतत्ववाचक होनेमें शंकाही नहीं। और देखिए-

सं सीदस्व महां असि शोचस्व देववीतमः ॥

ऋ. १।३६।९

" तू (देव-वीतमः) देवोंका उत्तम रक्षक और महान है, तू (शोचस्व) प्रकाशित होओ और (सं सीदस्व) साथ बैठो। " इस मंत्रका आध्यात्मिक तात्पर्य निम्न प्रकार है, कि आत्मा सब इंद्रियों और अवयवोंका उत्तम पालक और रक्षक है, वह एक महान शक्ति है, और वह इंद्रियोंके साथ रहने योग्य है, अर्थात् इंद्रियरूप देवसभामें जबतक वह बैठता है, तबतक ही इंद्रियोंका पालन होता है। और देखिए—

सं देवैः शोभते वृषा कवियोनावधि प्रियः ॥
वृत्रहा देववीतमः ॥ ऋ. ९।२५।३

" वृत्रका नाश करनेवाला, देवोंका उत्तम संरक्षक, (वृषा) बलवान, (कविः) शब्दकर्ता ज्ञानी, प्रिय (योनौ अधि) अपने स्थानपर (देवैः सं शोभते) देवोंके साथ उत्तम शोभता है। "

इस मंत्रका तात्पर्य स्पष्ट ही है कि " दुष्ट भाव रूप शत्रुओंका नाश करनेवाला, इंद्रिय शक्तियोंका उत्तम प्रकारसे सरं-

क्षण करनेवाला बलवान ज्ञानी और प्रिय आत्मा इंद्रियोंके साथ ही अपने स्वस्थानमें शोभता है। " उक्त मंत्रके " कवि, प्रिय " आदि शब्द अध्यात्मपक्षमें ही अधिक सार्थ प्रतीत होते हैं। यहांका वृत्र शब्द ' आवरक शत्रु ' का आशय बता रहा है। अध्यात्मपक्षमें आवरक शत्रु " दुष्ट भाव " है। इंद्रिय शक्तियोंके साथ जीवात्माकी शोभा फैल रही है। यह मंत्र " पवमान सोम " देवताके सूक्तमें आता है। प्रायः लोक समझते हैं कि पवमान सोम वल्लिका रस है। परंतु यह शब्द सोमरसका वाचक होता हुआ भी अध्यात्मपक्षमें जीवात्माका वाचक होता है। इसका शब्दार्थ, (पवमानः) पवित्रता करनेवाला (सोमः=स+उमा) संरक्षक शक्तिके साथ रहनेवाला आत्मा, है। आत्मा ही सबसे श्रेष्ठ पवित्र वस्तु है और ' रस ' नाम उसका ही है। परमात्माको भी " रस " कहते हैं, ' एक रस ' आदि शब्द प्रयोग आत्माके विषयमें प्रयुक्त होते ही हैं। इस प्रकार पवमान सोम शब्द आत्मविषयक ही उक्त मंत्रमें है। " उमा " जीवात्माकी अपनी निजशक्ति है, वह उसके साथ सदैव रहती है। उमाके विना शिव कदापि नहीं रहता इसका यही तात्पर्य है। पवमान सोम देवताके उक्त मंत्रमें जीवात्माका स्पष्ट वर्णन देखने योग्य है। ' प्रिय, कवी ' आदि शब्द सोम रसका वर्णन करही नहीं सकते। और देखिए—

यो होताऽऽसीत्प्रथमो देवजुष्टः ॥ ऋ. १०।८८।४

" देवों द्वारा सुसेवित पहिला होता था। " इसमें ' देवजुष्ट ' शब्द विशेष महत्व रखता है। मनुष्यका जीवनही एक बडा महान यज्ञ

है, इस यज्ञमें सब इंद्रिय जीते जागते प्रत्यक्ष देव पूजनीय होते हैं, और जीवात्माही इनकी संतुष्टिके लिये हवन करता है। इस विषयमें निम्न मंत्र विशेष मननपूर्वक देखिए—

तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ॥
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥

अथ. १०।२।२७

"अथर्वाका जो सिर है वह (समुब्जितः देवकोशः) देवोंका सुरक्षित कोश है। प्राण उस सिरका संरक्षण करता है, अन्न और मन भी संरक्षण करते हैं।"

'अथर्वा' उसको कहते हैं कि जिससे (थर्वण) चंचलता दूर हो गई है। मन आदिकोंकी स्थिरता संपादन करनेवाले योगीका नाम 'अ–थर्वा' होता है। इस योगीका सिर देवोंका कोश होता है। इस वर्णनसे देवोंका परिज्ञान हो सकता है। सिरमें निवास करनेवाले इंद्रिय जो हैं, वे सब यहांके देव हैं। दो आंख, दो कान, दो नाक, जिह्वा, ये सप्त देव सिरमें रहते हैं। इनकी सभा मस्तिष्कमें लगती है।। आत्माके अधिष्ठातृत्वमें ये सब यथायोग्य अपना अपना कार्य करते रहते हैं। शरीरके इंद्रिय देव होनेमें अब कोई शंकाही नहीं। ये जो ऊपर कहे हैं वे '**आजान–देव**' हैं। इनसे भिन्न दूसरे जो हैं उनका नाम है '**कर्म–देव**'। दो हाथ, दो पांव, पायु, उपस्थ, और मुख ये सात कर्म-देव हैं। इनके अतिरिक्त सब शरीरभर व्यापक त्वगिंद्रिय है। पूर्वोक्त आजान-देव

इन कर्म-देवोंसे श्रेष्ठ हैं, यह बात स्पष्ट ही है। इस प्रकार शतपथके कथनका स्पष्टीकरण वेदके मंत्रको देखनेसे स्वयं हो गया है। जब तक अध्यात्ममें इन देवोंका पता लगाया नहीं गया था, तब तक जो बात संदिग्ध थी, वह बात इस अर्थसे अधिक स्पष्ट हो गई है। इस प्रकार वेदका आध्यात्मिक तात्पर्य देखनेमें अर्थकी अधिक स्पष्टता होती है। इस विषयमें ब्राह्मण ग्रंथोंके थोडेसे प्रमाण यहां देना उचित है—

प्राणो वै समिधः ॥ ऐ. ब्रा. २।४

प्राणो वै तनूनपात् ॥ ऐ. ब्रा. २।४

वाग् वै त्वष्टा ॥ ऐ. ब्रा. २।४

मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणः ॥ ऐ. ब्रा. २।५

वाग् यज्ञस्य होता ॥ ऐ. ब्रा. २।५

प्राणा वै मरुतः ॥ ऐ. ब्रा. ३।१६

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रंथोंमें भी देवतादिकोंको अध्यात्मपक्षमें देखनेकी सूचनाएं दीं हैं। इनका तात्पर्य स्पष्ट ही है। इस अध्यात्मपक्षको ही लेकर मुख्यतया वेदका अर्थ करना योग्य है, पश्चात् यथाक्रम अन्य अर्थ होंगे ही। इस बातको सन्मुख रख कर निम्न मंत्र देखिए—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ॥

अथ. १०।७।१७

" जो विद्वान् पुरुषमें ब्रह्म जानते हैं वे परमेष्ठीकोभी जान सकते हैं। " अर्थात् जीवात्माकी वास्तविक अवस्था जो शरीरमें देखते हैं,

वे परमात्माकी वास्तविक स्थितिको जगतमें जान सकते हैं। क्यों कि दोनोंमें समानधर्मता ही है। जैसा जीवात्मा इंद्रियादि देवोंकेसाथ शरीरमें है, वैसाही परमात्मा सूर्यादि देवोंकेसाथ सृष्टिमें है। कल्पना कर लीजिए, कि जैसा अजन्मा जीवात्माका यह शरीर है वैसा ही अशरीरी परमात्माका शरीर यह संपूर्ण जगत् है। इस लिये अपने शरीरका विचार करनेसे जगद्व्यापक परमात्माका ज्ञान प्राप्त हो सकता है, ऐसा उक्त मंत्रमें कहा है। इसी दृष्टिसे निम्न मंत्र देखिए—

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे सर्वे समाहिताः ॥
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १३ ।
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे गात्रा विभेजिरे ॥
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥

अथ. १०।७।

"तेहत्तीस देव जिसके अंगमें रहे हैं, तेहत्तीस देव जिसके अंगमें अवयव रूप बने हैं, वह सबका आधार स्तंभ है। इन देवताओंको ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं।" अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार अपने शरीरमें ३३ देवताओंको जानना चाहिए। एक समय स्वकीय शरीरमें ३३ देवताओंकी कल्पना स्पष्ट रूपसे हो गई, तो बाहिरके सब देव स्वयं जाने जा सकते हैं। स्वशरीरमें इन देवताओंका प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है। वेदकी भाषासे भी देवताओंका प्रत्यक्ष साक्षात्कार प्रतीत होता है। "हे इंद्र! तु ऐसा कर! हे अग्ने! तू देवोंके साथ आओ।" इत्यादि वाक्य

प्रत्यक्ष साक्षात्कारके ही हैं। देवताओंके साथ बातचीत करनेकी भाषा वेदमें है, इस लिये अध्यात्मपक्षके प्रत्यक्ष देव वेदमें मुख्य-तया उद्दिष्ट हैं। तदनुसंधानसे अन्य पक्षोंमें अर्थका अनुभव करना है। अध्यात्मपक्ष मुख्य है ऐसा कहने मात्रसे अन्य पक्षोंके अन्य अर्थ खंडित नहीं होते। अध्यात्मपक्षके अर्थसे अपने आत्माका गौरव कितना है, इसका पता लग सकता है। जो ज्ञानी वेदका आध्यात्मिक अर्थ देखते हैं वे अपने आपको हीन दीन नहीं मान सकते, परंतु अपनेमें बलका अनुभव वे ही कर सकते हैं। देखिए—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः॥
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिंद्राग्नी अहमश्विनोभा॥
ऋ. १०।१२५।१

" मैं रुद्रों, वसुओं, आदित्यों और सब अन्य देवोंके साथ चलता हूं। मित्र, वरुण, इंद्र, अग्नि और दोनों अश्वि देवोंका मैं भरण पोषण करता हूं। "

उक्त अथर्व वेदके कथनानुसार इन सब देवोंको अपने शरीरमें सबसे प्रथम अनुभव करना चाहिए। इनका साक्षात्कार अपने शरीरमें जो करेंगे वे ही परमात्मामें इनको देख सकते हैं। मेरे आत्माके साथ वसु रुद्र आदि सब देव हैं, मित्रावरुण और अश्विनी कुमार तथा इंद्राग्नी आदिकोंका पालन पोषण मेरे आत्मा द्वारा हो रहा है, यह मंत्रका कथन अनुभवमें आना चाहिए। जिनके अनु-

भवमें यह बात स्पष्टताके साथ आ जायगी वे ज्ञानी ही बडे ब्रह्ममें सब विस्तृत देवताओंको यथा योग्य रीतीसे जान सकते हैं।

अब स्वशरीरमें इन देवोंको देखिए। (१) अपने प्राणही शरीरमें रुद्र हैं, (२) वक्तृत्व शक्ति अग्नि है, (३) श्वास और उच्छ्वास ये दो अश्विनी कुमार हैं, (४) इंद्र मन है (५) पृथिवी आप तेज आदि वसु हैं, इसीप्रकार अन्य देव हैं। सब देवोंका ज्ञान अध्यात्मपक्षमें अबतक मुझे न होनेसे सबका निर्देश यहां करना अत्यंत कठिन है। यहां इतनाही बताना है कि इस पक्षके अर्थसे अपनी आत्मशक्तिका पता लग सकता है, और अपना वैभव जाननाही धर्मका मुख्य कार्य है। अपनी शक्तिको जानना और उसका विस्तार करना धर्ममें अभीष्ट है॥

यहां एक बात और लिखना आवश्यक है कि अग्नि इंद्र आदि शब्द जीवात्माके वाचक होते हुए भी वागिंद्रिय, मन आदिके वाचक भी हैं। क्योंकि मन आदि द्वारा आत्मशक्तिही फैल रही है, इस लिये आत्माके नाम और अन्य इंद्रियोंके नामोंमें एकता दिखाई देती है। इस विलक्षण शब्दरचनाके कारण कई विद्वान् भ्रममें पडते हैं। परंतु एकवार आत्मशक्तिका अपनेही अन्य शक्तियोंके साथ संबंधका ज्ञान हुआ तो पश्चात् कोई मुष्किल नहीं रहती। जो मनुष्य नेत्रकी शक्तिको अपने आत्मामें अनुभव करेंगे वे अपने आत्माको भी नेत्रका नेत्र कहेंगे। इस अवस्थामें नेत्र शब्द आत्मवाचक बन जाता है। इसी प्रकार सूर्यका प्रकाश परमात्माके कारण हो रहा है इस बातको जो जानता है, वह कहता है, कि

सूर्यका सूर्य वह परमात्मा है। इस अवस्थामें सूर्य शब्द परमात्म वाचक हो गया। इसीप्रकार अग्नि इंद्र आदि शब्दोंके विषयमें जानना उचित है। इस प्रकार पाठक जान सकते हैं कि स्वशरीरमें सबसे प्रथम देवताओंका अनुभव होनेसे परमात्मामें सब देवताओंका ज्ञान होनेमें सुगमता हो सकती है।

देवताओंका इसप्रकार स्वरूप जाननेसे वैदिक देवताओंकी स्पष्ट कल्पना मनमें आसकती है। और जब वैदिक देवताओंकी स्पष्ट कल्पना आजायगी तब वेद और ब्राह्मण पढना भी आसान होना संभव है। पूर्वोक्त ब्राह्मणग्रंथोंमें दिये हुए अलंकार और गाथाएं इसप्रकार खुल जातीं हैं इतनाही नहीं, परंतु पुराणोंकी कथाएं भी जो प्रथम असंभवनीय प्रतीत होती हैं, उक्त देवताओंकी कल्पनासे रूपकालंकार व्यक्त होनेके कारण सुबोध होतीं हैं।

वैदिक कल्पनाएं न केवल पुराणोंमें परंतु अन्यधर्मोंकी गाथाओंमें भी प्रतिबिंबित हो गईं हैं। बिंबका ज्ञान ठीक प्रकार होनेसे प्रतिबिंबका ज्ञान होना सुगम हो सकता है। इसी प्रकार एक वार वैदिक देवताओंकी कल्पना हो गई तो जगत्के गाथा संग्रहका अर्थ लगना सुगम होने वाला है। इसलिये वेदके एक एक देवताका तथा सब देवतासमुच्चयका विचार होना आवश्यक है।

विकार वश होनेसे यह कार्य होना नहीं है। शांतिके साथ पक्षपात छोडकर इस कार्यमें सालोंसाल प्रयत्न करना चाहिए। इस समयतक वेदका ठीक अर्थ जाननेमें यदि कोई कठिनताइ है, तो यही

कठिनता है कि संपूर्ण देवताओंका बोध स्वशरीरमें अनुभव करनेका कोई उपाय दिखाई नहीं देता। अथर्ववेदका मंत्र इसविषयमें स्पष्टरूपसे कह रहा है कि "जो पुरुषमें ब्रह्मको देखता है वह परमेष्ठी परमात्माको जानता है।" तथा "सब देवताएं इस पुरुषमें हैं जैसी गौवें गोशालामें रहतीं हैं।" ये मंत्र अपना भाव विना संदेह कह रहे हैं। यह ही सच्चा उपाय है; जिस समय यह उपाय हस्तगत होगा उसीसमय वेदका अर्थ विशद हो सकता है। तत्पश्चात् कोई शंकास्थान नहीं रहेगा। इसलिये इस बातकी खोज करनेके लिये सबके प्रयत्न होने चाहिए।

यहां एक और बात कहना योग्य है, वह यह है कि केवल ३३ ही देवताएं हैं, ऐसा नहीं हैं। ३३ देवताओंका एक गण है। इसके अतिरिक्त अन्य बहुतसीं देवताएं हैं कि जो ३३ देवताओंसे भिन्न हैं। इस लिये सब देवताओंकी संख्या ३३ से कई गुणा अधिक है। वेदमंत्रोंमें कई देवताओंके नाम आये हैं जो सब एकत्रित किये जांयगे तो सैंकडों देवताएं बन जातीं हैं। देवताओंके विचारमें इन सबका विचार आता है। और इनको यथायोग्य रीतीसे अपने शरीरमें प्रथम देखना चाहिए और तत्पश्चात् बाहेरके विश्वमें देखना चाहिए। इस प्रकार जब ठीक ठीक पता लग जायगा तब वेदार्थ जाना जासकता है। इस लिये सब विद्याप्रेमी सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे इस कार्यकी यथायोग्य प्रकारसे सहायता करें।

बालकोंकी धर्मशिक्षा।

बालक और बालिकाओंकी धर्मशिक्षाके लिये निम्न ग्रंथ विशेष प्रकारसे बनाये हैं—

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथम भाग। प्रथम श्रेणीकी धर्मशिक्षाके लिये। मूल्य -) एक आना।

(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीय भाग। द्वितीय श्रेणीकी धर्मशिक्षाके लिये। मूल्य =) दो आने।

(३) वैदिक-पाठ-माला। प्रथम पुस्तक। तृतीय श्रेणीकी धर्मशिक्षाके लिये। मूल्य ≡) तीन आने।

अन्य श्रेणियोंके लिये ग्रंथ तैयार हो रहे हैं॥ अपने अपने स्थानके पाठशालाओंमें इनहींकी पढाई शुरू कीजिए और बालकोंके अंतःकरणोंमें वैदिक धर्मका वायु—मंडल बनाइए।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल,

औंध (जि. सातारा)